

RISHI VISHWAMITRA VIDYA FOUNDATION

Presented by: Acharya Kapil

Contact: 8756390767

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त २, मन्त्र ८

॥ मूल मन्त्र ॥

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा ।

क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥८

पदपाठः

ऋतेन । मित्रावरुणौ । ऋतःस्पृश । क्रतुम् । बृहन्तम् । आशाथे इति ॥८

१. मन्त्र विनियोग (Mantra Viniyoga)

ऋषिः	मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः
देवताः	मित्रावरुणौ
छन्दः	गायत्री
विनियोगः	आचार्य सायण के अनुसार, सोमयाग (प्रवर्य/उपसद आदि इष्टियों) में 'मैत्रावरुण' नामक ऋत्विज के शस्त्र पाठ में इस मन्त्र का विनियोग होता है।

२. शब्दार्थ (Word Meaning)

ऋतेनः	सत्य फल के द्वारा (सायण) / सत्यस्वरूप ब्रह्म या जल के द्वारा (दयानन्द)।
मित्रावरुणौः	हे मित्र और वरुण देवता!
ऋतावृधौः	जल (या सत्य/यज्ञ) की वृद्धि करने वाले।
ऋतस्पृशाः	जल का स्पर्श करने वाले या सत्य को प्राप्त कराने वाले।
क्रतुम्ः	इस अनुष्ठित सोमयाग को (सायण) / सम्पूर्ण संसाराख्य महान यज्ञ को (दयानन्द)।
बृहन्तम्ः	अत्यन्त विशाल (अङ्ग-उपाङ्गों से युक्त)।
आशाथेः	तुम दोनों व्याप्त करते हो / प्राप्त करते हो।

३. आचार्य सायण का भाष्य (Ritualistic Approach)

भावार्थ

हे मित्र और वरुण देव! तुम दोनों सत्य फल (अवश्यंभावी यजमान को मिलने वाले फल) के निमित्त से हमारे इस अङ्ग-उपाङ्गों से युक्त अत्यन्त विशाल सोमयाग में आते हो (इसे व्याप्त करते हो)। तुम दोनों कैसे हो? तुम 'ऋतावृधौ' अर्थात् जल (या सत्य/यज्ञ) को बढ़ाने वाले हो और 'ऋतस्पृशा' अर्थात् जल आदि का स्पर्श करने वाले (वृष्टि करने वाले) हो।

सायण का मुख्य दृष्टिकोण

सायण यहाँ 'ऋतु' का अर्थ सकाम यज्ञ (सोमयाग) लेते हैं और 'ऋत' का अर्थ यास्क मुनि (निरुक्त) के अनुसार 'जल' या 'यज्ञ' या 'सत्य' लेते हैं। मित्र-वरुण वृष्टि के देवता हैं जो यज्ञ में भाग लेने आते हैं।

४. महर्षि दयानन्द सरस्वती का भाष्य (Scientific & Spiritual Approach)

भावार्थ: परमेश्वर और भौतिक विज्ञान के सन्दर्भ में

हे मित्र और वरुण (प्राण और उदान / अथवा सूर्य और जल)! तुम दोनों सत्यस्वरूप ब्रह्म (ऋत) के द्वारा सत्य के वर्धक होकर, जल को अपनी आकर्षण और वृष्टि प्रक्रिया से बढ़ाते हुए, इस महान सम्पूर्ण संसाराख्य (सृष्टि रूपी) यज्ञ को व्याप्त कर रहे हो।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

दयानन्द जी के अनुसार यहाँ मित्र (सूर्य/ऊर्जा) और वरुण (जल/द्रव) की भौतिक वैज्ञानिक प्रक्रिया का वर्णन है। सूर्य की किरणें (मित्र) और जल (वरुण) मिलकर 'ऋत' (सत्य प्राकृतिक नियमों या जल-चक्र) को बढ़ाते हैं और इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रूपी महान यज्ञ (ऋतु) को चलायमान रखते हैं। 'ऋतु' केवल अग्नि में दी जाने वाली आहुति नहीं, बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सुचारू संचालन (Cosmic Yajna) है।

५. व्याकरण और स्वर-प्रक्रिया (Grammar & Etymology)

(सायण और दयानन्द भाष्य में दिए गए प्रमाणों के आधार पर)

मित्रावरुणौ: 'मित्रश्च वरुणश्च इति मित्रावरुणौ'। पाणिनीय सूत्र 'देवताद्वन्द्वे च' (6.3.26) से पूर्वपद (मित्र) को 'आनङ्' आदेश होकर 'मित्रा' बनता है।

ऋतावृधौ: 'ऋत' (सत्य/जल) को बढ़ाने वाले। 'वृध्' धातु (वर्धयितारौ - णिजन्त अर्थ में) से 'क्विप्' प्रत्यय। 'अन्येषामपि दृश्यते' (6.3.137) सूत्र से पूर्वपद 'ऋत' के अकार को दीर्घ होकर 'ऋता' बन गया (ऋत + वृध = ऋतावृध)।

ऋतस्पृशा: 'सुपां सुलुक्...' (7.1.39) सूत्र से प्रथमा द्विवचन 'औ' के स्थान पर वेदों में 'डा' (आ) आदेश हो गया है (ऋतस्पृशौ की जगह ऋतस्पृशा)।

क्रतुम्: 'कृञ्' धातु से उणादि सूत्र 'कृञः क्रतुः' (1.77) से क्रतु शब्द सिद्ध होता है। प्रत्यय स्वर के कारण यह आदि-उदात्त है।

आशाथे: अश् धातु (व्याप्त करना)। पाणिनीय सूत्र 'छन्दसि लुङ्लिट्' (3.4.6) से वेद में वर्तमान काल (लट्) के अर्थ में 'लिट्' लकार का प्रयोग हुआ है। यहाँ छान्दस होने के कारण 'नुट्' का आगम नहीं हुआ है।

६. सायण भाष्य में दी गई विशेष स्वर-प्रक्रिया (Advanced Accent Rules)

सायण ने इस मन्त्र के भाष्य में पाणिनीय अष्टाध्यायी के वैदिक स्वरों (Accents) पर बहुत गहन चर्चा की है:

- आमन्त्रित स्वर (निघात):** "मित्रावरुणौ", "ऋतावृधौ" और "ऋतस्पृशा" — ये तीनों पद सम्बोधन (Vocative) हैं। 'आमन्त्रितस्य च' (8.1.19) से आष्टमिक निघात (पूरी तरह से अनुदात्त) प्राप्त होता है।
- पराङ्मवद्भाव निषेध:** सायण शंका उठाते हैं कि 'सुबामन्त्रिते पराङ्मवत्स्वरे' (2.1.2) से 'ऋतेन' के साथ मित्रावरुणौ का सम्बन्ध क्यों नहीं हुआ? उत्तर देते हैं कि 'समर्थः पदविधिः' (2.1.1) के अनुसार पदों में परस्पर अन्वय (अर्थ का सीधा जुड़ाव) होना चाहिए। यहाँ "ऋतेन" का सीधा जुड़ाव "आशाथे" क्रिया से है, मित्रावरुणौ से नहीं। इसलिए सामर्थ्य न होने से पराङ्मवद्भाव नहीं हुआ।
- विशेषण-विशेष्य का निघात:** 'मित्रावरुणौ' सामान्य सम्बोधन है और 'ऋतावृधौ' उसका विशेषण है। 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' (8.1.72) से पूर्व पद अविद्यमान हो जाता है, परन्तु 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे...' (8.1.73) से उस अविद्यमानवद्भाव का प्रतिषेध हो जाता है, जिससे दूसरे आमन्त्रित (सम्बोधन) का निघात निर्बाध रूप से सिद्ध हो जाता है।

निष्कर्ष: यह मन्त्र केवल एक कर्मकाण्डीय आह्वान नहीं है, बल्कि महर्षि दयानन्द के अनुसार सृष्टि के प्राकृतिक नियमों (Thermodynamics / Water Cycle - सूर्य और जल की क्रिया) का एक उत्कृष्ट वैज्ञानिक सूत्र भी है, जिसे पाणिनीय व्याकरण की कसौटी पर पूर्णतः सिद्ध किया गया है।